कुछ यादें

डॉ. मनमोहन कपूर उर्फ मन्नू

प्रमोद उपाध्याय और शशि सक्सेना

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम को शुरुआती चरण से मज़बूती देने वाले डॉ. मनमोहन कपूर का दिसम्बर 2011 में निधन हो गया। मनमोहन के साथ लम्बे अर्से तक काम करने वाले प्रमोद और शशि यहाँ मन्नू के व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं पर चर्चा करके, एक तरह से मन्नू को याद करने की कोशिश कर रहे हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र के अध्यापक डॉ. एम. एम. कपूर कब और कैसे 'मन्नू' नाम से जाने लगे, हमें नहीं पता। हम जब विद्यार्थियों के रूप में उनके सम्पर्क में आए तो हमने पाया कि उन्हें इसी नाम से पुकारा जाना ज़्यादा पसन्द है। हम कह नहीं सकते कि ऐसा अपने ओहदे, काबिलीयत और अनुभव को नकार कर साधारण व्यक्ति के रूप में खुद को प्रस्तुत करने की कोशिश के कारण था या फिर इसलिए कि वे जानते थे कि इस तरह के अनौपचारिक सम्बोधन से वे लोगों को अपने अधिक करीब ला सकते हैं और उनका अपनापन हासिल कर सकते हैं। दोनों ही सूरतों में यह उनके अपरम्परागत होने का परिचायक था। सम्बोधन ही क्या, उनके व्यवहार में भी अनौपचारिकता झलकती थी। ऐसी कि कोई शर्मीला-से-शर्मीला विद्यार्थी भी उनसे किसी-न-किसी हद तक खुल ही जाता था।

मन्नू अपने अध्यापन को बेहद गम्भीरता से लेते थे। उनके कमरे में जाने पर आप उन्हें अपनी कक्षा की

तैयारी में लगे हुए देख सकते थे। एक-एक कक्षा के लिए वे घण्टों तैयारी करते थे। किसी भी नए बैच के साथ पहली कक्षा में वे रसायन शास्त्र नहीं बल्कि मानव सभ्यता का इतिहास और मौजूदा आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था के बारे में चर्चा करते थे। रसायन शास्त्र या यह कहें कि स्कूलों और विश्वविद्यालयों में रसायन शास्त्र का पाठ्यक्रम, आस-पास की दुनिया से पूरी तरह कटा हुआ होता है। शायद अपनी इस पहली कक्षा में वे इसी कमी की भरपाई करने की कोशिश करते थे। वे हमें प्रेरित करते कि हम एक-दो पुस्तकों तक सीमित न रहें। वे बताते कि विषय की समझ को पुख्ता करने के लिए ज़रूरी है कि हम हर अध्याय (टॉपिक) कई-कई किताबों में से पढ़ें। वे हमें यह भी बताते कि फलाँ अध्याय किस किताब में किस तरह से दिया गया है और किस अन्य में किस तरह। हम हैरान रह जाते कि कोई व्यक्ति एक-एक अलग अध्याय के लिए इतनी सारी किताबें पढ़ सकता है और फिर याद भी रख सकता है कि उन अलग-अलग किताबों में क्या दिया है। ज़ाहिर है कि ऐसा करने के लिए उन्हें खासी मेहनत करनी पड़ती थी। उन्हें रसायन शास्त्र और अपने व्यवसाय, दोनों से ही लगाव था।

सत्र की आखिरी कक्षा के बाद वे अपने विद्यार्थियों को पार्टी देते, जहाँ वे उनसे अपने अध्यापन के बारे में उनकी प्रतिक्रिया लेते। विश्वविद्यालय में गिनती के ही ऐसे अध्यापक हैं जो विद्यार्थियों से अपने अध्यापन के बारे में प्रतिक्रिया लेने में विश्वास रखते हैं और आलोचना सुनने को तैयार रहते हैं। वे एक और तरह से भी औरों से अलग थे। जहाँ अधिकांश शिक्षक या अधिकांश लोग, चाहे वे किसी भी व्यवसाय में लगे हों, अपने कैरियर का ग्राफ ऊपर ले जाने और दूसरों को पछाड़ने की दौड़ में लगे रहते हैं, वे केवल अपनी कक्षाओं से ही सन्तुष्ट थे। ऐसी सन्तुष्टि आम तौर पर किसी में भी नहीं दिखाई देती और निश्चित रूप से यह उन्हें औरों से अलहदा खड़ा कर देती है।

मन्नू की दूसरी बड़ी पहचान 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' (होविशिका) से थी। वे उन गिने-चुने लोगों में से थे जो कार्यक्रम से शुरुआत से अन्त तक जुड़े रहे। हमने भी उनके साथ कई शिक्षक प्रशिक्षण शिविरों में भाग लिया। यहाँ हमने उन्हें और करीब से देखा। हमें वे बैठकें याद हैं जिनमें होविशिका के स्त्रोत दल के शिक्षकों और हमारे जैसे नए लोगों को उनके अनुभव और विषय की समझ से काफी कुछ सीखने को मिलता। परन्तु साथ ही मिलता एक खुशनुमा और बराबरी का माहौल। वे स्त्रोत दल के साथ किस्से-कहानियाँ और चुटकुले बाँटते, ठहाके लगाते, शेरोशायरी करते, लस्सी पीने और नदी में नहाने जाते और गानों की

मन्नू स्त्रोत दल के साथ एक स्त्रोत दल प्रशिक्षण शिविर में। कुर्सी पर बैठी सामने की कतार में बाएँ से चौथे।

महफिलों में शरीक होते। वे एक बेहद ज़िन्दादिल इन्सान थे। बुद्धि के साथ-साथ वे अपने हँसमुख स्वभाव और वाक-पटुता के लिए भी खासे प्रसिद्ध थे।

एक समय रसायन शास्त्र के स्त्रोत दल के सदस्यों को लगा कि होविशिका में रसायन शास्त्र का हिस्सा थोड़ा कमज़ोर है और तय हुआ कि रसायन के पाठ्यक्रम में बदलाव किया जाए। इसके लिए दिल्ली, होशंगाबाद और भोपाल में बैठकों, चर्चाओं और कार्यशालाओं के कई दौर चले। इन बैठकों के दौरान हम मन्नू के व्यक्तित्व या यूँ कहें कि उनके ज्ञान के एक अन्य पहलू से रू-बरू हुए। वे विज्ञान दर्शन और रसायन शास्त्र व भौतिकी के विकास के इतिहास के बारे में असीम जानकारी और समझ रखते थे। वे इन विषयों पर घण्टों, पूरे विश्वास के साथ बोल सकते थे। जब वे बोलते तो समझ में आता कि वे किस तरह इस पूरे इतिहास से अभिभूत हैं। उनको सुनने पर समझ में आता कि इस इतिहास को समझना विषय की समझ को और पुख्ता करने में कैसे सहायक हो सकता है। उनके इस तरह से जानकारी बाँटने से वे नीरस बैठकें बेहद बहुमूल्य हो जाया करती थीं। सच कहें तो कभी-कभी हमें लगता कि हम उस दिन के तयशुदा काम से भटक रहे हैं। पर ऐसा केवल समय की कमी के कारण होता, हम यह अच्छी तरह से जानते थे कि उनके इस असीम ज्ञान से अप्रत्यक्ष रूप से

काम में मदद मिलती है। उनकी एक कमी थी कि वे कभी कुछ भी लिखते नहीं थे। उनका विश्वास शायद केवल मौखिक रूप से जानकारी बाँटने में था। आज लगता है कि इन कारणों से उनकी असीम जानकारी और गहरी समझ उनके साथ चली गई।

पर उनका योगदान केवल यही नहीं होता था। जब भी किसी कारण से बैठकों या कार्यशालाओं के दौरान लोगों में आपसी मनमुटाव या मतभेद हो जाता तो वे बात सम्हालने की कोशिश करते। वे कहते, ज़िन्दगी को इतनी गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए। वे कोशिश करते कि कोई भी इन झगड़ों से खुद को दुखी न होने दे। कहने की ज़रूरत नहीं है कि इन बैठकों में भी उनके किस्से-कहानियाँ और मज़ाक सदा जारी रहते थे।

सामाजिक और आर्थिक गैरबराबरी, अन्याय और शोषण के प्रति भी वे असंवेदनशील नहीं थे। इसलिए इन मुद्दों पर काम करने वालों को वे बेहद गम्भीरता से लेते, उनसे बातचीत करके जानकारी हासिल करने की कोशिश करते। चाहे भोपाल गैस काण्ड के पीड़ितों के लिए पैसा इकट्ठा किया जा रहा हो या फिर गुजरात के दंगा प्रभावित लोगों के लिए, वे हमेशा आगे रहते।

हमें याद आता है विभाग की छत पर एकान्त में स्थित उनका कमरा, जहाँ केवल घुमावदार सीढ़ियों से ही पहुँचा जा सकता था। हमारी कई बैठकें उनके इसी कमरे में हुईं। जैसे ही लोग वहाँ पहुँचते, मन्नू कई सारे डब्बे खोल कर रख देते, जिनमें तरह-तरह की खाने की चीज़ें होती थीं। साथ ही चाय बनाने के लिए पानी चढ़ा दिया जाता। कमरे में चारों तरफ

ऊँट की सवारी - मन्नू के जीवन का एक रंग यह भी।

अलमारियाँ थीं, जो किताबों से भरी थीं। उफ! कितनी तरह की हज़ारों किताबें उन्होंने इकट्ठा की हुई थीं। हिन्दी, अँग्रेज़ी व उर्दू साहित्य (गद्य और पद्य, दोनों) की किताबें, कला से सम्बन्धित किताबें, दर्शन की किताबें, विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित किताबें और रसायन शास्त्र और भौतिक विज्ञान की एक-से-एक नायाब किताबें। अच्छी खासी लाईब्रेरी था उनका वह कमरा। वे खुद सभी तरह की चीज़ें पढ़ा करते थे। साथ ही कोई भी, कभी भी इनमें से कोई भी किताब उनसे ले सकता था। जितने विश्वास के साथ वे रसायन शास्त्र या विज्ञान के इतिहास के बारे में बताते थे, उतने ही विश्वास से वे यह भी बता सकते थे कि कुर्तुअल एन हैदर और इस्मत चुगतई के लेखन में क्या समानता व अन्तर है, या फिर यह कि इन दोनों विद्रोही महिलाओं के व्यक्तित्वों में क्या समानता और अन्तर है।

मन्नू जीना जानते थे और खूब खुल कर जीते थे। परन्तु यह सब उनके रिटायरमेंट के बाद काफी तेज़ी से बदल गया। उन्होंने सारी किताबों की सूचियाँ बनवाईं और सभी जानकारों में बँटवाईं, ताकि लोग उनके इस अनमोल खज़ाने को सहेज लें। बहुत ही कम लोगों ने उनसे किताबें लीं। फिर सारी किताबें बड़े-बड़े डिब्बों में बन्द होकर उनके घर चली गईं। उनमें से अधिकांश डिब्बे कभी खुले ही नहीं। उनका पढ़ना बेहद कम हो गया। शुरुआत के सालों में वे विश्वविद्यालय के 'सेंटर फॉर साइंस एजूकेशन एंड कम्यूनिकेशन' के विभिन्न शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों में शामिल होते रहे, पर धीरे-धीरे यह भी बन्द-सा हो गया। गिरते स्वास्थ्य के कारण उनका बाहर निकलना बेहद कम होता गया और फिर बिलकुल बन्द हो गया। वे अपने बारे में बहुत-ही कम बात करते थे, पर उनसे मिलने पर साफ दिखाई देता कि वे अकेलेपन से जूझ रहे थे। बहुत ही कम लोगों को उनकी हालत का अन्दाज़ था। दुख होता, यह देख कर कि जिन मन्नू के कमरे में महफिलें जमी रहती थीं, वे अब किस कदर अकेले थे।

पर दुनिया का यह नियम है - यहाँ लोग तभी तक याद रखे जाते हैं जब तक उनकी ज़रूरत होती है। और अगर कोई व्यक्ति उम्र के कारण या मानसिक या शारीरिक अस्वस्थता के कारण जीवन पर से अपनी पकड़ खो देता है तो वह पूरी तरह भुला दिया जाता है। ऐसा ही कुछ मन्नू के साथ हुआ।

वे चले गए अकेले...।

प्रमोद उपाध्यायः रसायन विज्ञान में पढ़ाई की है, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इम्यूनोलॉजी में वैज्ञानिक। वैकल्पिक प्रयोग और उपकरणों के डिज़ाइन में रुचि।
शशि सक्सेनाः रसायन विज्ञान में पढ़ाई, दीनदयाल उपाध्याय कॉलेज, दिल्ली में पढ़ाती है।

होविशिका फॉलो-अप रजिस्टर

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के दौरान जो विभिन्न प्रशासनिक सुविधाएँ जुटाई गईं, उनमें से एक थी कि दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षक छह महीने के लिए होशंगाबाद आकर होविशिका में अकादमिक योगदान दे सकते थे। दिल्ली विश्वविद्यालय स्रोत समूह के जिन शिक्षकों ने इस प्रावधान का उपयोग किया और होविशिका के साथ फील्ड में एक लम्बा समय गुज़ारा उनमें से एक थे डॉ. मनमोहन कपूर उर्फ मन्नू

8.12.1974

आज सुबह दक्षिण से यहाँ पहुँचा। सीधे ही मीटिंग (फॉलो-अप) में घुस गया। बम्बई से दो और सज्जन थे। एक थोड़े बुज़ुर्ग सज्जन (नाम नहीं पकड़ पाया) जल्दी चले गए। टी.आई.एफ.आर. के डॉ. सतीश चन्दर पूरे समय रहे और पूरी चीज़ में सक्रिय रुचि ले रहे थे। पवारखेड़ा (के.के. तिवारी) और डोलरिया (रावत और तिवारी) की उत्तर-पुस्तिकाओं पर चर्चा हो रही थी। डोलरिया के श्री (छोटे) तिवारी कह रहे थे कि वक्र (रेखा) या वृत की लम्बाई को कम्पास से नापना ही बेहतर है। अनिल (सदगोपाल) विनम्र थे और उन्हें यह कहना नहीं चाह रहे थे कि वे (तिवारी) एक गलत उत्तर का पक्ष ले रहे हैं। दूसरों ने उन्हें इन शब्दों में यह बात कही - "आप गलत हैं।" वे अड़े रहे और उन्होंने यहाँ तक कहा - "बहुमत का फैसला तो ज़्यादातर मूर्खों का फैसला होता है।" अनिल ने नपाई में आने वाली त्रुटियों की बात करने की कोशिश की। बहुत समय लगा पर बात बहुत आगे बढ़ नहीं पाई। आखिरकार बात बहुत स्वाभाविक तरीके से सुलझ गई। उन्होंने बहुत बड़प्पन के साथ (उनका यही अन्दाज़ था) बात स्वीकार कर ली।

यह बहुत आश्चर्यजनक था (पर क्यों?) कि दशमलव पर इतना समय और ऊर्जा लगाने के बाद कोई तो था (बाकी स्वीकार करने से डरते थे) जो यह कहे कि 1 घण्टा 20 मिनट, 1.33 घण्टे क्यों होना चाहिए और 1.20 घण्टे क्यों नहीं।

अनिल ने उन्हें कक्षा के बाहर के दौरों-परिभ्रमण

- के उद्देश्यों के बारे में और अकादमिक सत्र 74-75 में किन अध्यायों को किया जाना है, इस बारे में बताया। वे एक संयुक्त बैठक करने के बारे में उद्विग्न थे। मीटिंग सौम्य माहौल में खत्म हुई। मीटिंग के बाद चौबे, सोनी और सुदर्शन (कपूर) के बीच लम्बी चर्चा चली।

अनिल और सुदर्शन को किशोर भारती जाने के और वहीं काम करने के मेरे इरादे के बारे में बताया।

रात का लम्बा सत्र (सुबह के 1.00 बजे तक) अनिल, मीरा और सतीश के साथ।

अतिथि गृह, वह पुराना बड़ा-सा घर जो काफी खराब है, या शायद और भी बुरा हो सकता था, बगैर यशोदा बहन की देखरेख और प्यार के।

9.12.1974 / दोपहर

अनिल, मीरा और सतीश को इटारसी छोड़ने के बाद सुदर्शन जवाहरलाल नेहरू गेंहूँ अनुसंधान संस्थान गए और मैं पवारखेड़ा स्कूल (के.के. तिवारी)।

बड़ी-सी, भव्य, अच्छी रखरखाव वाली इमारत। यह एक उच्चतर माध्यमिक (हायर सेकण्डरी) कृषि विद्यालय है। वे (के.के. तिवारी) कृषि विज्ञान शिक्षक के साथ गप्पों में लगे थे और छात्र उनसे कुछ दूरी पर झुण्डों में बैठे थे। उनके अनुसार वे 'आकाश की ओर' वाला अध्याय कर रहे थे। मुझे ऐसा लगा कि वे (शिक्षक और विद्यार्थी) धूप सेंकने के अलावा कुछ नहीं कर रहे थे। मैं कुछ देर उनके पास बैठा और फिर छात्रों के समीप चला गया।

समय के आधार पर छाया की लम्बाई के उनके ग्राफ देखे। अच्छे थे। सबने लिखा था कि सबसे छोटी छाया उत्तर दिशा की ओर होती है, पर यह नहीं जानते थे कि उत्तर दिशा का पता कैसे किया जाए। आखिर थोड़ा इशारा देने के बाद उनमें से एक ने कहा कि उन्हें कम्पास का

उपयोग करना चाहिए था।

उनके साथ चलते-चलते स्कूल से गेंहूँ संस्थान तक आ गया। चाय पी और वापस आ गया।

मुझे लगता है कि अनिल और सुदर्शन ने यह तय किया है कि मुझे कम-से-कम फिलहाल तो रसूलिया में ही रहना चाहिए।

10.12.1974 / दोपहर / किशोर भारती

मछेराकलाँ (हलकेवीर पटेल और ए.के. जैन)

सतीश और मैं साइकिल से मछेराकलाँ गए। सड़क तो है ही नहीं और जो है वह सिर्फ लैंडरोवर या बैलगाड़ी के ही लायक है। साइकिल तो झमेला ही है, न हो तो बेहतर। आप या तो उसे रेत में से धकेलते या घसीटते रहते हैं या फिर उठाकर पानी की नालियाँ या खेत पार करते हैं।

हलकेवीर पटेल स्कूल में नहीं थे। एक विद्यार्थी प्राथमिक शाला गया और वे आ गए। उन्होंने कुछ भी नहीं करवाया था और आज भी नहीं पढ़ा रहे थे। बीमार थे। उन्होंने एक संयुक्त कक्षा (6-7-8) को दशमलव पढ़ाया था। सतीश और मैंने विद्यार्थियों से सवाल पूछे। श्री ए.के. जैन ने स्कूल बन्द किया और साइकिल से चल दिए।

कुल मिलाकर सन्तोषजनक। कुछ छात्र तो काफी अच्छे।

वापस गाड़ी से रसूलिया लौटे। खटारा पीछे बँधी आई।

11.12.1974 / सुबह / रसूलिया

(रमाकान्त दुबे व दीक्षित)

श्री दुबे को प्रभारी प्रधान पाठक होने के चलते अपने दफ्तर के कार्यों में डूबा पाया। श्री दीक्षित बाहर थे (ज़िला शिक्षा अधिकारी - डी.ई.ओ. कार्यालय से अटैच किए गए थे)। उन्होंने कुछ भी नहीं करवाया था। कर नहीं सकते क्या? उन्होंने 'संयोग और सम्भावना' व 'आकाश की ओर' के अध्यायों को अलग भी नहीं किया था। वे चाहते थे कि मैं आठवीं कक्षा (उनकी विज्ञान की कक्षा) में जाऊँ और 'संयोग और

सम्भावना' पढ़ाऊँ। कक्षा में जाकर पाया कि 'सं और सं' की शुरुआत हो चुकी है (सम्भवतः वी.एस. भाटिया द्वारा)। बच्चों के पास उनकी नोटबुक नहीं थी। लगा कि उन्हें फिर से दोहराना बेमानी होगा - न सिर्फ 'सं और सं' पर शायद उनकी किताब का कोई भी अध्याय। बेहतर तो यह होगा कि उनके शिक्षक/शिक्षिका, वे जो कोई भी हों, इस काम को खुद ही करें और एकबारगी सीख भी लें।

औसत के बारे में बात की। बहुत सन्तोषजनक नहीं था। पढ़ाने पर ध्यान नहीं दिया गया है। मालूम होता है कि तबादला और कार्यालय में अटैच किया जाना समस्या की जड़ है। पिछले साल के रिज़ल्ट भी खासे बुरे थे। दोष देने को कोई नहीं है।

दोपहर में सुदर्शन से बात हुई। उनको बताया कि (मुझे ऐसा लगा कि) श्री दुबे चाहते हैं कि मैं उनकी कक्षाएँ पढ़ाऊँ। वे (सुदर्शन) भी इससे सहमत थे कि मुझे उनकी कक्षाएँ कतई नहीं पढ़ानी चाहिए। मैं यहाँ उन्हें यह सीखने में मदद करने के लिए था कि विज्ञान कैसे पढ़ाया जाता है, उनकी कक्षाएँ लेने के लिए नहीं। वे (सुदर्शन) भाटिया के द्वारा कक्षाएँ लिए जाने से भी खुश नहीं थे।

शिक्षकों को उनकी कक्षाओं से और पढ़ाने के रास्ते सीखने से बेदखल करने की बजाय कक्षाएँ पढ़ाने को प्रोत्साहित करने की ज़रूरत है।

12.12.1974 / दोपहर / डोलरिया

(रावत, तिवारी व तिवारी)

सातवीं कक्षा (श्री रावत) 'भार और तुला' अध्याय कर रही थी। दोनों तिवारी धूप सेंक रहे थे। बड़े तिवारी को उनकी कक्षा के विद्यार्थियों ने घेरा हुआ था, छोटे बरामदे में बैठे थे। श्री रावत एक पलड़े वाली एक तुला का काम दिखा रहे थे - दो स्प्रिंग, दो पेंसिल आदि की मदद से (बाल वैज्ञानिक, चित्र-48)। बच्चों की टोलियाँ खुद काम नहीं कर रही थीं (जैसी कि अपेक्षा की जाती है)। हवा काम में रुकावट पैदा कर रही थी (बाहर) इसलिए वे सब कमरे के अन्दर आ गए थे। इमारत काफी खस्ताहाल थी। छात्रों की संख्या बहुत थी। गाँव काफी बड़ा है। आबादी लगभग 4000 होगी।

पॉइंटर की समस्या का हल एक तार को पेंसिल पर लपेटने और उसके विस्थापन (movement) को देखने के सुझाव की मदद से निकाला गया। पॉइंटर स्केल पर क्षैतिज ही रहे, यह ज़रूरी नहीं था।

समय पूरा हो गया था। प्रयोग को अगले दिन के लिए मुल्तवी कर दिया गया। रावत बढ़िया हैं। वे विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना और काम में शामिल करना जानते हैं।

रावत ने प्रोग्राम (विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम) के भविष्य का मुद्दा उठाया। छोटे तिवारी वरिष्ठ (युनिवर्सिटी शिक्षक) और कनिष्ठ (स्कूल शिक्षक) की समस्या, प्रोत्साहन के अभाव और प्रशासन की कमियों पर चालू हो गए। चर्चा पूरे देश के किसी भी कॉफी हाउस के डिनर के पहले या बाद की चर्चा जैसी हो गई जिसमें अन्त में सब एक ही राय पर पहुँचते हैं - वे (जिन्हें कोई नहीं जानता) उसे काम नहीं करने देते, और इस बारे में कुछ नहीं किया जा सकता।

13.12.1974 / जासलपुर

(श्री चौबे और श्री सोनी)

श्री चौबे बाहर बरामदे में आठवीं कक्षा को पढ़ा रहे थे और कमरे के अन्दर सातवीं के छात्र 'समय' के प्रयोग कर रहे थे। समय मापने के लिए उनके पास एक कागज़ के स्केल के साथ एक अगरबत्ती, एक सुलगती हुई निशान लगी पटसन की डोरी और घासलेट की चिमनी में घासलेट के घटते तल थे। मैंने सुझाव दिया कि वे इसके लिए एक स्केल के साथ लगी मोमबत्ती का उपयोग भी कर सकते थे।

न्यूटन व्हील कुछ दिक्कत दे रहा था। उन्होंने (चौबे) साइकिल का कोई भाग आज़माने का सुझाव दिया। यह सुझाव गौरतलब है।

उन्होंने इन चीज़ों के लिए कहा:

1. क्लैम्प - 1
2. ब्यूरेट के लिए जेट ट्यूब
3. विद्युत के प्रयोगों के लिए सेल
4. ब्यूरेट
5. ग्राफ कागज़

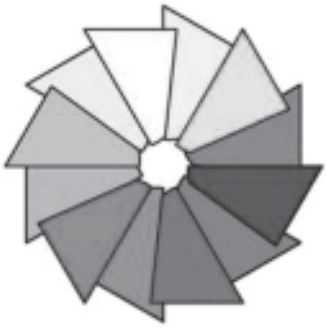

उन्होंने काफी लम्बी बात की (सुदर्शन और रामानुज की गैर-मौजूदगी में)। बताया कि वे इस साल अपने काम की ओर ध्यान क्यों नहीं दे पा रहे हैं। वे प्रोग्राम के लिए दुखी थे और उसके बारे में चिन्तित भी थे। प्रोग्राम के धीमे हो जाने और भागीदारों में उत्साह की कमी के लिए वे अपने

कुछ सहकर्मी, सुदर्शन और अनिल को ज़िम्मेदार मानते थे। प्रशासन (अनिल व सुदर्शन) के व्यवहार में पहले (1972-73) की तुलना में वे काफी बदलाव देख पा रहे थे। वे अपेक्षा करते थे कि अगर प्रोग्राम को अपने पहले की रफ्तार फिर हासिल करनी हो तो अनिल व सुदर्शन कुछ बातों को नज़रअन्दाज़ कर दें। मुझे लगता है कि उनका आशय टी.ए.-डी.ए. से था। मैंने उनकी पूरी बात पर यकीन करने से इन्कार कर दिया। मैंने उनसे कहा कि उनके जैसे लोग, जो प्रोग्राम के बारे में इतनी शिद्दत से सोचते थे, अपने सहकर्मियों को समझाकर बड़ी मदद कर सकते थे।

सुदर्शन मुझे बताते हैं कि वे एक निष्ठावान, पुराने ज़माने के आदर्शवादी गुरु जैसे शिक्षक हैं।

12.2.1975 / मालाखेड़ी

तनु नमक का अम्ल, कैल्शियम सल्फेट, फैरम क्लोराइड और ऑक्ज़ालिक अम्ल पहुँचाया। स्वामी आठवीं कक्षा में थे, मिट्टी कुटवा रहे थे। उनके पास डी.ई.ओ. (ज़िला शिक्षा अधिकारी) के नाम लिखा एक पत्र था। विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के बारे में लिखी शिकायत। लिखा था कि कार्यक्रम के संयोजक उन्हें सामान पहुँचाने में असमर्थ थे जिसकी वजह से वे सिलेबस पूरा नहीं कर पाए थे। सामान की सूची में सेल, अल्कोहल, फॉरमैलिन, रबर की नली, छन्नी, और भी कई चीज़ें थीं। उन्होंने मुझे वह शिकायती पत्र दिखाया। मैंने उनके इस कदम की तारीफ की और कहा कि उसे वे डी.ई.ओ. कार्यालय भेजने से चूकें नहीं। मैंने उनसे कहा कि वे एक प्रतिलिपि हमें भी भेजें। वे मूल चिट्ठी मुझे देने को तैयार थे पर मैंने मना कर दिया और स्पष्ट किया कि हमें सिर्फ प्रतिलिपि ही चाहिए थी। मैंने उनसे कहा कि वे इन चीज़ों की सूची हमें मीटिंग में बता सकते थे। कहना न होगा कि वे उन सब में सबसे कम गम्भीर हैं। बाकी की वार्तालाप मैं वैसा ही शब्दशः लिखूँ तो बेहतर रहेगा (आगे की स्वामी से हुई बातचीत को मनमोहन कपूर ने हिन्दी में ही दर्ज किया है)।

- साहब, आप चीज़ें तो देते ही नहीं?

- कौन-सी?
- सारी जो लिखी हैं, लिटमस, केशिका नली, ट्यूब, टूटी ब्यूरेट, नौसादर, ज़िंक काम नहीं करता और छलनी।
- छलनी और ट्यूब आपकी कहाँ गई?
- चूहे खा गए।
- छलनी और चूहे? किसी को कहेंगे तो कोई क्या सोचेगा।
- साहब, नहीं तो बाढ़ में बह गई होगी।
- यह सब सामान तो आपको इस साल दिया गया है।
- छलनी इस साल नहीं आई। हम कोई कच्चा काम नहीं करते हैं। यह आपकी इस साल की चीज़ों की लिस्ट।
- छलनी तो नहीं है।
- पर मिट्टी के प्रयोगों का सामान तो 1973-74 में दिया गया था ।
- हाँ जी। केशिका नली तो टूट गई होगी।
- (आदमी सच भी बोलता है।)
- तो भई उस रोज़ सबको दी है, आप भी ले आते।
- हम क्यों लाएँ? आप लाएँ।
- पर आप जब तक बताएँगे नहीं कि आपके पास क्या नहीं है, मुझे कैसे पता लगेगा? आप कल वहाँ से गुज़रे थे तो ले आते।
- नहीं साहब, हम सेंटर में सिवाय इतवार के नहीं घुसेंगे।
- क्यों?
- अरे भई चोरी-वोरी हो जाती है न।
- आपने की क्या?
- हम क्यों करेंगे।
- लिटमस का आप बोल आते, मैं ले आता। अभी कल ही तो रोहना दे कर आया हूँ।
- अच्छा साहब यह तो अब दिलवा दो।
- अमोनिया की आपने?
- वह तो नहीं की।
- वह भी करनी है।
- ऑक्सीजन और हाइड्रोजन कर दी है और यह भी नहीं बनी।
- बनेगी कहाँ से। आपकी डिलीवरी ट्यूब तो लूज़ है।
- जैसी आपने दी।
- पर आप बताएँ तो ही पता लगेगा।
- अब बता तो रहे हैं साहब।

- तो कल परसों तक आप तक माल भी पहुँच जाता, वैसे यह चिट्ठी ज़रूर भेज दीजिएगा। क्योंकि। अल्कोहल वगैरह वहीं दिलवा दें तो अच्छा। हम तो पूछ-पूछ कर हार गए।
- तिवारी साहब?
- सिवनी गए हैं। चना कट रहा है ना। आप चना खाएँगे?
- नहीं।
- कल लेकर आना (लड़कों से)।
- मैं नहीं खाऊँगा।
- साहब, यह खादी आप यहीं पहनते हैं या दिल्ली में भी?
- स्वामी जी यह सारे कपड़े मेरे अपने हैं। मांगे के नहीं। खादी में फायदा है तो पहनता हूँ। खादी की पैंट नहीं पहनता क्योंकि बहुत महँगी पड़ती है और ठीक नहीं रहती।
- आपके दिल्ली आएँगे। कोई लीडर मरे।
- क्यों?
- तब रेलगाड़ी फ्री होगी न।
- अच्छा। अमोनिया ज़रूर बनाइएगा।
- नौसादर तो है नहीं।
- अमोनियम क्लोराइड तो है। उनके बिखरे सामान में से निकाल कर देता हूँ।
- अच्छा, साले लड़कों ने बताया भी नहीं।
- आपकी उन्मुखीकरण कोर्स वाली फाईल कहाँ है? और यह आप बताएँगे कि नौसादर ही अमोनियम क्लोराइड होता है।
- फाईल तो पूर में बह गई।
- नर्मदा घाट पर रख कर आए थे क्या?
- जो मर्ज़ी समझ लो साहब।

मुँहफट्ट, लापरवाह, उजड्ड और चालाक स्वामी का सामान बुरी तरह बिखरा हुआ। रसायन की सावधानियों का कागज़ फाड़कर, रिबन बना कर बाकी सब कार्डों को बाँधने के काम लाता है। काम कम, बातें ज़्यादा। मालाखेड़ी के बच्चे भी कुछ कम नहीं, जैसा गुरु वैसा चेला। मालाखेड़ी से वापस रसूलिया गया।

■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■

फॉलो-अप रजिस्टर के पन्नों का हिन्दी अनुवादः टुलटुल बिस्वास। टुलटुल एकलव्य के प्रकाशन कार्यक्रम से जुड़ी हैं।